Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal

Volume 4 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

बघेलखण्ड के लोक संस्कृति पर्यटन स्थलों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ. अंकित सिंह

अतिथि विद्वान, इतिहास विभाग

पण्डित शम्भूनाथ विश्वविद्यालय शहडोल, जिला-शहडोल

सारांश (Abstract)

बघेलखण्ड, जो वर्तमान मध्य प्रदेश के रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली, शहडोल, अनूपपुर तथा उमरिया जिलों में विस्तृत है, केवल धार्मिक स्थलों की दृष्टि से ही नहीं, अपितु अपनी समृद्ध एवं बहुरंगी लोक संस्कृति की दृष्टि से भी भारत के सांस्कृतिक मानचित्र में विशिष्ट स्थान रखता है। इस क्षेत्र में कोल, गोंड तथा बैगा जैसी जनजातियों की जीवन-पद्धति, बघेली भाषा में रचित आल्हा-ऊदल जैसी वीर-गाथाएँ, करमा, सैला, अहिररई-लाठी, सजनई तथा कलशा जैसे लोक-नृत्य, कजरी-चैती जैसे कृषि-गीत, मैहर घराने की शास्त्रीय संगीत परम्परा तथा विविध हस्तशिल्प एवं पारम्परिक मेले मिलकर एक जीवंत सांस्कृतिक धरोहर का निर्माण करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में बघेलखण्ड के लोक संस्कृति पर्यटन स्थलों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें बघेली भाषा-साहित्य, लोक-नृत्य एवं लोक-गीत परम्पराएँ, जनजातीय समुदाय एवं उनके मेले-उत्सव, मैहर संगीत घराना, हस्तशिल्प तथा पारम्परिक वस्त्र, तथा बांधवगढ़ एवं संजय-दुबरी जैसे प्रकृति-सांस्कृतिक पर्यटन स्थलों का विश्लेषण सम्मिलित है। अध्ययन द्वितीयक स्रोतों, स्थानीय लोक-साहित्य संकलनों, गजेटियरों तथा समकालीन शोध सामग्री पर आधारित है। निष्कर्ष रूप में यह पाया गया कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति परम्परा शहरीकरण एवं आधुनिकीकरण के दबाव में क्षीण होती जा रही है, जिसके संरक्षण एवं पर्यटन-आधारित पुनर्जीवन हेतु ठोस एवं समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

बघेलखण्ड, लोक संस्कृति, बघेली भाषा, आल्हा-ऊदल, करमा नृत्य, कजरी गीत, मैहर घराना, जनजातीय संस्कृति, कोल, गोंड, बैगा, हस्तशिल्प, सांस्कृतिक पर्यटन।

प्रस्तावना-

बघेलखण्ड मध्य भारत का एक ऐसा सांस्कृतिक प्रदेश है, जिसकी पहचान केवल राजनीतिक इतिहास अथवा धार्मिक स्थलों तक सीमित नहीं है, अपितु इसकी वास्तविक आत्मा उसकी लोक संस्कृति में निवास करती है। विंध्य पर्वत श्रेणी की गोद में बसा यह क्षेत्र सदियों से विभिन्न जातीय एवं जनजातीय समुदायों के सह-अस्तित्व, अंतःक्रिया तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान का साक्षी रहा है। रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली, शहडोल, अनूपपुर तथा उमरिया जिलों में फैला यह प्रदेश आज भी अपनी बोली, गीत, नृत्य, वेश-भूषा तथा लोक-कथाओं के माध्यम से अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को जीवंत रखे हुए है।

भौगोलिक दृष्टि से बघेलखण्ड विंध्य पर्वत श्रेणी का विस्तृत पठारी भू-भाग है, जहाँ सघन वन, पहाड़ी नदी-घाटियाँ तथा उपजाऊ मैदान एक साथ विद्यमान हैं। इस भौगोलिक विविधता का प्रत्यक्ष प्रभाव यहाँ की लोक संस्कृति पर भी परिलक्षित होता है, क्योंकि मैदानी क्षेत्रों में निवासरत कृषक जातियों की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ, जैसे कजरी तथा फाग गीत, वन-क्षेत्रों में निवासरत जनजातीय समुदायों की करमा तथा सैला जैसी नृत्य-परम्पराओं से भिन्न परन्तु परस्पर पूरक हैं। यही कारण है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति को किसी एकल स्वरूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता, अपितु इसे मैदानी, पहाड़ी तथा वन्य क्षेत्रों की सांस्कृतिक विविधताओं के समन्वित रूप में समझा जाना चाहिए।

बघेलखण्ड की लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मौखिक परम्परा है। यहाँ लिखित साहित्य की तुलना में मौखिक परम्परा कहीं अधिक समृद्ध एवं जीवंत है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी गीतों, गाथाओं तथा अनुष्ठानिक कर्मकाण्डों के माध्यम से हस्तान्तरित होती रही है। कृषि-कार्य से जुड़े कजरी, हिन्दौली, चैती तथा सावन-झूला जैसे गीत, फाग एवं मंगल-गीत जैसे पर्व-गीत, भगत तथा स्थानीय देवताओं से सम्बद्ध अनुष्ठानिक गीत, तथा बम्बुलिया एवं झोलईया जैसे यात्रा-गीत इस क्षेत्र के जन-जीवन में गहराई से रचे-बसे हैं। इसी प्रकार करमा, सैला, अहिररई-लाठी, सजनई तथा कलशा जैसे लोक-नृत्य विभिन्न जातीय एवं जनजातीय समुदायों की पहचान तथा उनके सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं।

बघेलखण्ड की भाषिक पहचान भी इसकी सांस्कृतिक विशिष्टता का महत्वपूर्ण आधार है। यहाँ बोली जाने वाली बघेली अथवा बाघेली बोली, जो हिन्दी की एक प्रमुख बोली मानी जाती है, अर्ध-मागधी अपभ्रंश से विकसित हुई है और इसकी अपनी विशिष्ट शब्दावली, सर्वनाम-रूप तथा व्याकरणिक संरचना है। बघेली भाषा में रचित आल्हा-ऊदल

गाथा, जो वीर रस से परिपूर्ण एक दीर्घ लोक-महाकाव्य है, इस क्षेत्र की मौखिक साहित्यिक परम्परा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। बारहवीं शताब्दी के बनाफर वीरों आल्हा और ऊदल की बावन लड़ाइयों का वर्णन करने वाली यह गाथा आज भी बघेलखण्ड के गाँवों में वर्षा ऋतु के अवसर पर सामूहिक रूप से गाई जाती है, जो इस लोक-महाकाव्य की जीवंतता तथा सांस्कृतिक निरंतरता को प्रमाणित करती है।

इसके साथ ही बघेलखण्ड की जनजातीय संस्कृति, विशेष रूप से कोल, गोंड तथा बैगा जनजातियों की परम्पराएँ, इस क्षेत्र की सांस्कृतिक बहुलता को और अधिक समृद्ध बनाती हैं। कोल जनजाति की गोहिया पंचायत व्यवस्था, गोंड तथा बैगा जनजातियों के करमा एवं सैला नृत्य, तथा इन समुदायों के अपने विशिष्ट देवी-देवता एवं कर्मकाण्ड इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण अंग हैं। इसके अतिरिक्त मैहर नगर से जुड़ी भारतीय शास्त्रीय संगीत की मैहर घराना परम्परा, जिसकी स्थापना पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ द्वारा की गई थी, बघेलखण्ड को सांगीतिक दृष्टि से भी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पहचान प्रदान करती है। इन समस्त तत्वों के समन्वय से बघेलखण्ड की लोक संस्कृति एक बहुआयामी तथा जीवंत सांस्कृतिक परिदृश्य प्रस्तुत करती है, जिसका ऐतिहासिक एवं पर्यटकीय दृष्टिकोण से अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

वर्तमान समय में शहरीकरण, वैश्वीकरण तथा जनसंख्या के पलायन के कारण बघेलखण्ड की अनेक लोक-कलाएँ तथा परम्पराएँ लुप्त होने के कगार पर हैं। समाचार-पत्रों तथा सांस्कृतिक संगठनों की रिपोर्टों से यह स्पष्ट होता है कि करमा, सैला, गुदुम तथा कोलदहका जैसी लोक-कलाओं के कलाकार अब केवल बड़े आयोजनों के अवसर पर ही सक्रिय रूप से सामने आते हैं, जबकि शासकीय स्तर पर इनके संरक्षण हेतु अपेक्षित सहायता अभी भी सीमित है। ऐसी स्थिति में सांस्कृतिक पर्यटन एक ऐसा माध्यम बन सकता है, जो इन लुप्त होती परम्पराओं को न केवल आर्थिक अवलंब प्रदान करे, अपितु उन्हें नई पीढ़ी तथा बाह्य विश्व के समक्ष पुनः प्रतिष्ठित भी करे। प्रस्तुत शोध पत्र इसी उद्देश्य से बघेलखण्ड के लोक संस्कृति पर्यटन स्थलों तथा परम्पराओं का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

शोध पत्र का उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं। सर्वप्रथम, बघेलखण्ड की भाषिक एवं साहित्यिक परम्परा, विशेष रूप से बघेली बोली तथा आल्हा-ऊदल जैसी लोक-गाथाओं के ऐतिहासिक विकास-क्रम का अध्ययन करना इस शोध पत्र का प्राथमिक उद्देश्य है। द्वितीयतः, बघेलखण्ड की प्रमुख लोक-नृत्य तथा लोक-गीत परम्पराओं

का वर्गीकरण एवं विश्लेषण करना, तथा उनके सामाजिक-जातीय सन्दर्भ को स्पष्ट करना भी इस अध्ययन का उद्देश्य है। तृतीयतः, इस क्षेत्र में निवासरत कोल, गोंड तथा बैगा जैसी प्रमुख जनजातियों की सांस्कृतिक विशेषताओं, उनके मेलों, उत्सवों तथा सामाजिक संस्थाओं का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करना भी इस शोध पत्र का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। चतुर्थतः, मैहर संगीत घराने जैसी शास्त्रीय सांगीतिक परम्परा तथा बघेलखण्ड के हस्तशिल्प एवं पारम्परिक वस्त्र-शैलियों के ऐतिहासिक महत्व का विश्लेषण करना भी इस अध्ययन में सम्मिलित है। पंचमतः, बांधवगढ़ एवं संजय-दुबरी जैसे प्रकृति-सांस्कृतिक स्थलों के सन्दर्भ में स्थानीय जनजातीय जीवन तथा वन्यजीव पर्यटन के अंतर्संबंध का अध्ययन करना भी इस शोध पत्र का उद्देश्य है। अंततः, इन समस्त लोक सांस्कृतिक तत्वों के संरक्षण, दस्तावेजीकरण तथा सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से पुनर्जीवन हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना इस शोध कार्य का अंतिम एवं समग्र उद्देश्य है।

शोध पत्र का महत्व-

प्रस्तुत शोध पत्र अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक-ऐतिहासिक दृष्टि से यह अध्ययन बघेलखण्ड की उस मौखिक एवं अलिखित सांस्कृतिक परम्परा को दस्तावेजीकृत करने का प्रयास करता है, जो अब तक अपेक्षाकृत कम शोध का विषय बनी है। धार्मिक स्थलों की तुलना में लोक संस्कृति पर केन्द्रित समग्र ऐतिहासिक अध्ययन बघेलखण्ड के सन्दर्भ में और भी सीमित हैं, जिससे यह शोध पत्र इस शोध-रिक्तता को भरने का एक सार्थक प्रयास प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टि से यह अध्ययन बघेलखण्ड के विभिन्न जातीय एवं जनजातीय समुदायों, जैसे कोल, गोंड, बैगा, यादव, गडरिया तथा अन्य कारीगर जातियों, की सांस्कृतिक भूमिका एवं योगदान को रेखांकित करता है, जिससे क्षेत्रीय सामाजिक इतिहास की समझ अधिक समावेशी बनती है।

आर्थिक तथा विकासात्मक दृष्टि से यह शोध पत्र सांस्कृतिक पर्यटन के सम्भावित लाभों को उजागर करता है। वर्तमान समय में सांस्कृतिक एवं जनजातीय पर्यटन विश्व स्तर पर एक तेजी से बढ़ता हुआ क्षेत्र है, और बघेलखण्ड, अपनी समृद्ध लोक-कला परम्परा तथा जनजातीय जीवन-शैली के कारण, इस दिशा में महत्वपूर्ण सम्भावनाएँ रखता है। मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा संचालित आदिवर्त जनजातीय लोककला संग्रहालय जैसी संस्थाएँ इस दिशा में पहले से ही सक्रिय हैं, परन्तु बघेलखण्ड क्षेत्र में इस प्रकार के स्थानीय संग्रहालयों तथा सांस्कृतिक केन्द्रों का विस्तार अभी भी अपेक्षित है। शैक्षणिक दृष्टि से भी यह अध्ययन इतिहास, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र तथा लोक-

साहित्य के विद्यार्थियों के लिए एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ सामग्री का कार्य करेगा, विशेष रूप से उन शोधार्थियों के लिए जो क्षेत्रीय लोक संस्कृति के दस्तावेजीकरण में रुचि रखते हैं।

बघेलखण्ड के लोक संस्कृति पर्यटन स्थलों का ऐतिहासिक अध्ययन-

बघेलखण्ड की लोक संस्कृति को समझने के लिए इसे कुछ प्रमुख आयामों में विभक्त किया जा सकता है, जिनमें भाषा एवं मौखिक साहित्य, लोक-नृत्य एवं लोक-गीत परम्परा, जनजातीय समुदाय एवं उनके मेले-उत्सव, शास्त्रीय संगीत परम्परा, हस्तशिल्प एवं पारम्परिक वस्त्र, तथा प्रकृति-सांस्कृतिक पर्यटन स्थल सम्मिलित हैं। इन प्रत्येक आयाम का ऐतिहासिक विवरण एवं विश्लेषण निम्नलिखित है।

बघेली भाषा एवं मौखिक साहित्य परम्परा-

बघेली अथवा बाघेली, हिन्दी की एक प्रमुख बोली है, जो बघेलखण्ड क्षेत्र में व्यापक रूप से बोली जाती है। इसके मन्नाडी, रिवाई, गंगाई, मंडल तथा केवाती जैसे स्थानीय नाम भी प्रचलित हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से बघेली का उद्भव अर्ध-मागधी अपभ्रंश से हुआ मानी जाता है और इसकी अपनी विशिष्ट सर्वनाम-संरचना है, जैसे 'मुझे' के स्थान पर 'म्वाँ' अथवा 'मोही', तथा 'तुझे' के स्थान पर 'त्वाँ' अथवा 'तोही' का प्रयोग। बघेली की तिरहारी, जुड़ार तथा गहोरा जैसी उप-बोलियाँ भी क्षेत्रीय विविधता को प्रदर्शित करती हैं। बघेली में लिखित साहित्य की तुलना में मौखिक लोक-साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है, जिसमें आल्हा-ऊदल गाथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक रूप से प्रचलित रचना है।

आल्हा-ऊदल गाथा, जो भोजपुरी तथा बघेली सहित उत्तर भारत की अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में गाई जाती है, बारहवीं शताब्दी के बनाफर वंशीय वीरों आल्हा और ऊदल की बावन लड़ाइयों का वीर रस-प्रधान वर्णन प्रस्तुत करती है। महोबा के शासक परमर्दिदेव के अधीन कार्यरत इन दोनों योद्धाओं की गाथा मूल रूप से कवि जगनिक द्वारा रचित मानी जाती है, परन्तु समय के साथ मौखिक परम्परा में अनेक प्रक्षेप जुड़ते गए, जिससे यह गाथा एक विशाल लोक-महाकाव्य का स्वरूप ले चुकी है। बघेलखण्ड में यह गाथा विशेष रूप से वर्षा ऋतु में, जब कृषि-कार्य से अवकाश मिलता है, सामूहिक रूप से गाई जाती है। मैहर की शारदा देवी मंदिर से सम्बद्ध आल्हा की भक्ति-कथा, जो इस गाथा के धार्मिक आयाम को भी उजागर करती है, यह प्रमाणित करती है कि बघेलखण्ड में वीर-गाथा परम्परा तथा धार्मिक आस्था एक-दूसरे में गहनता से गुंथी हुई हैं। इस प्रकार आल्हा-ऊदल गाथा बघेलखण्ड की मौखिक साहित्यिक परम्परा का सबसे जीवंत तथा सांस्कृतिक पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है।

वर्तमान समय में बघेली भाषा तथा उसके साहित्य के संरक्षण हेतु कुछ स्थानीय विद्वानों तथा सांस्कृतिक संगठनों द्वारा प्रयास किए जा रहे हैं, यद्यपि यह प्रयास अभी भी अपेक्षाकृत असंगठित तथा सीमित संसाधनों पर निर्भर हैं। बघेली में लिखित साहित्य का अभाव इस बोली के संरक्षण के मार्ग में एक प्रमुख चुनौती है, क्योंकि अधिकांश ज्ञान मौखिक परम्परा के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है। भाषावैज्ञानिक तथा लोक-साहित्य के शोधार्थियों द्वारा बघेली की शब्दावली, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का संकलन एक महत्वपूर्ण शैक्षणिक कार्य है, जो न केवल भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से अपितु सांस्कृतिक पर्यटन की दृष्टि से भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि पर्यटकों के लिए स्थानीय भाषा एवं मुहावरों का परिचय भी एक आकर्षक सांस्कृतिक अनुभव प्रस्तुत कर सकता है।

लोक-नृत्य एवं लोक-गीत परम्पराएँ

बघेलखण्ड की जातीय एवं सामाजिक विविधता का सर्वाधिक जीवंत प्रदर्शन यहाँ की लोक-नृत्य परम्पराओं में दिखाई देता है। करमा नृत्य, जो मुख्यतः गोंड तथा बैगा जनजातियों द्वारा दशहरा के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है, सामूहिक हर्ष एवं कृषि-समृद्धि के उल्लास का प्रतीक है। सैला नृत्य भी इन्हीं जनजातीय समूहों द्वारा किया जाता है और इसमें लाठी अथवा दण्ड का प्रतीकात्मक प्रयोग होता है। अहिररई-लाठी नृत्य, जो यादव जाति द्वारा किया जाता है, यद्यपि भारत के अनेक भागों में प्रचलित है, परन्तु बघेलखण्ड में इसकी अपनी विशिष्ट शैली एवं प्रस्तुति-पद्धति विकसित हुई है। सजनई नृत्य चमार, बसोर तथा कुम्हार जातियों द्वारा श्रम-गीत एवं उत्सव-नृत्य के मिश्रित रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि कलशा नृत्य मुख्यतः गडरिया जाति की जातीय पहचान से जुड़ा हुआ है। गोंड जनजाति की ढुलिया उपजाति द्वारा प्रस्तुत गुदुम्बाजा नृत्य, जिसमें गुदुम, ढफ, मंजीरा, शहनाई तथा टिमकी जैसे पारम्परिक वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता है, भी इस क्षेत्र की समृद्ध वाद्य-परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है।

लोक-गीत परम्परा की दृष्टि से भी बघेलखण्ड अत्यंत समृद्ध है। कृषि-कार्य से सम्बद्ध कजरी, हिन्दौली, चैती तथा सावन-झूला गीत वर्षा ऋतु एवं फसल-चक्र के विभिन्न चरणों को व्यक्त करते हैं। फाग तथा मंगल-गीत जैसे पर्व-गीत होली एवं अन्य शुभ अवसरों पर गाए जाते हैं, जबकि भगत तथा स्थानीय देवताओं से सम्बद्ध अनुष्ठानिक गीत धार्मिक कर्मकाण्डों का अभिन्न अंग हैं। बम्बुलिया एवं झोलईया जैसे यात्रा-गीत तथा बंजोरवा जैसे व्यवसाय-गीत यह प्रदर्शित करते हैं कि बघेलखण्ड की लोक-गीत परम्परा जीवन के प्रत्येक पक्ष, यथा कृषि, व्यवसाय, यात्रा तथा उत्सव, से गहनता से जुड़ी हुई है। इन गीतों के वाद्य-संगत में प्रयुक्त होने वाले नगाड़ा, ढोल, बांसुरी, शहनाई तथा

सारंगी जैसे परम्परागत वाद्ययंत्र भी इस क्षेत्र की सांगीतिक विरासत के महत्वपूर्ण अंग हैं, यद्यपि आधुनिकीकरण के प्रभाव से इनका प्रचलन निरंतर कम होता जा रहा है।

जनजातीय समुदाय, सामाजिक संस्थाएँ एवं मेले-उत्सव

बघेलखण्ड की जनजातीय संरचना में कोल, गोंड तथा बैगा जनजातियाँ प्रमुख स्थान रखती हैं। कोल जनजाति, जो बघेलखण्ड क्षेत्र में विशेष रूप से सघन रूप से निवास करती है, अपनी परम्परागत गोहिया पंचायत व्यवस्था के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो विवाह, विवाद-निवारण तथा सामाजिक अनुशासन से सम्बद्ध निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कोल समाज में लमसेना अर्थात सेवा-विवाह, चूड़ी प्रथा अर्थात विधवा पुनर्विवाह, तथा राजी-बाजी अर्थात प्रेम-विवाह जैसी परम्पराएँ भी सामाजिक संगठन की विशिष्टता को दर्शाती हैं। गोंड तथा बैगा जनजातियाँ, जो बघेलखण्ड के वन-क्षेत्रों में विशेष रूप से निवासरत हैं, अपने विशिष्ट लोक-देवताओं, वन-आधारित जीवन-शैली तथा करमा-सैला जैसे नृत्यों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक पहचान को जीवंत रखती हैं। बैगा जनजाति का ठाकुर देव नामक प्रमुख लोक-देवता तथा बेवार कृषि-पद्धति जैसी परम्पराएँ इस समुदाय की प्रकृति-केन्द्रित जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करती हैं।

बघेलखण्ड में दशहरा के अवसर पर आयोजित होने वाला करमा उत्सव, देवउठनी ग्यारस के अवसर पर अहीर समुदाय द्वारा मनाया जाने वाला राऊत उत्सव, तथा कोल जनजाति से सम्बद्ध दहका पर्व जैसे उत्सव इस क्षेत्र के सामाजिक कैलेण्डर के महत्वपूर्ण अंग हैं। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश शासन के संस्कृति विभाग द्वारा खजुराहो में संचालित आदिवर्त जनजातीय लोककला संग्रहालय में समय-समय पर आयोजित होने वाले 'देशज' जैसे सांस्कृतिक समारोहों में बघेलखण्ड तथा बुंदेलखण्ड की जनजातीय नृत्य एवं गायन परम्पराओं का प्रदर्शन किया जाता है, जो इन लुप्त होती कलाओं के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार की दिशा में एक सराहनीय पहल है। तथापि यह भी उल्लेखनीय है कि बघेलखण्ड क्षेत्र में स्वयं इस प्रकार के स्थायी सांस्कृतिक संग्रहालय अथवा प्रदर्शन-केन्द्रों का अभाव है, जिससे स्थानीय स्तर पर इन परम्पराओं को सतत मंच नहीं मिल पाता।

यह भी उल्लेखनीय है कि मध्य प्रदेश की समग्र जनजातीय संरचना में कोल जनजाति की गोहिया पंचायत व्यवस्था को तीसरी सबसे प्रमुख जनजातीय सामाजिक संस्था माना जाता है, जबकि सबसे बड़ी भील जनजाति की भगोरिया हाट परम्परा तथा दूसरी सबसे बड़ी गोंड जनजाति की घोटुल तथा मड़ई परम्पराएँ मध्य प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में प्रचलित हैं। इस तुलनात्मक सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि बघेलखण्ड, अपनी कोल-प्रधान जनजातीय संरचना के

कारण, मध्य प्रदेश की जनजातीय सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन में एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। गोहिया पंचायत जैसी परम्परागत न्याय-व्यवस्था का अध्ययन न केवल मानवशास्त्रीय दृष्टि से अपितु सामुदायिक स्वशासन के ऐतिहासिक प्रतिमानों को समझने की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है, जो वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था के साथ इसके अंतर्संबंधों पर भी प्रकाश डाल सकता है।

पारम्परिक मेले एवं हाट-बाजार परम्परा-

बघेलखण्ड के ग्रामीण जीवन में साप्ताहिक हाट-बाजारों तथा वार्षिक मेलों का सामाजिक-आर्थिक जीवन में केन्द्रीय स्थान है। ये हाट-बाजार, जो प्रायः सप्ताह के किसी निश्चित दिन किसी निश्चित स्थान पर आयोजित होते हैं, न केवल कृषि-उत्पादों तथा हस्तशिल्प वस्तुओं के व्यापार का केन्द्र हैं, अपितु सामाजिक मिलन, विवाह-सम्बन्ध स्थापना तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के भी महत्वपूर्ण अवसर हैं। इन हाट-बाजारों में जनजातीय तथा गैर-जनजातीय दोनों समुदायों की सक्रिय सहभागिता देखी जाती है, जिससे ये स्थल बघेलखण्ड की सामासिक संस्कृति के जीवंत प्रतीक बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक स्थलों से सम्बद्ध वार्षिक मेले, जैसे मैहर का नवरात्रि मेला तथा देवतालाब का श्रावण मेला, भी अपने धार्मिक स्वरूप के साथ-साथ लोक-कला प्रदर्शन, हस्तशिल्प विक्रय तथा पारम्परिक व्यंजनों की प्रस्तुति के भी महत्वपूर्ण मंच हैं। इन मेलों में स्थानीय बघेली भोजन, जैसे कोदो-कुटकी से निर्मित पारम्परिक व्यंजन, महुआ से सम्बद्ध खाद्य सामग्री तथा अन्य स्थानीय विशिष्ट पदार्थ भी उपलब्ध होते हैं, जो सांस्कृतिक पर्यटन की दृष्टि से एक अतिरिक्त आकर्षण प्रस्तुत करते हैं।

मैहर संगीत घराना : शास्त्रीय संगीत की परम्परा-

बघेलखण्ड की सांगीतिक विरासत में मैहर नगर का स्थान अत्यंत विशिष्ट है, क्योंकि यहीं भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रतिष्ठित मैहर घराने की स्थापना हुई। इस घराने के प्रवर्तक पद्म विभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ थे, जिन्होंने सेनिया घराने की ध्रुपद शैली से प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् अपनी विशिष्ट सांगीतिक शैली विकसित की। मैहर घराने की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसका हस्तांतरण किसी एक परिवार के भीतर नहीं, अपितु गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से हुआ, जिससे यह घराना सितार, सरोद, वीणा, सुरबहार तथा वायलिन जैसे विविध वाद्ययंत्रों के अनेक महान कलाकारों को जन्म देने में सफल रहा। पण्डित रविशंकर, उस्ताद अली अकबर खाँ तथा अन्नपूर्णा देवी जैसे विश्वविख्यात संगीतज्ञ इसी परम्परा की उपज हैं।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने मैहर में ही मैहर कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना की, जिससे यह नगर भारतीय शास्त्रीय संगीत शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि मैहर, जो अपनी शारदा देवी मंदिर के कारण पहले से ही एक प्रमुख धार्मिक तीर्थ रहा है, इस प्रकार धार्मिक तथा सांगीतिक दोनों परम्पराओं का समन्वित केन्द्र बन गया। बघेलखण्ड के लोक संस्कृति पर्यटन के सन्दर्भ में मैहर घराने का यह ऐतिहासिक महत्व इसे केवल एक धार्मिक स्थल से आगे बढ़कर एक सांगीतिक-सांस्कृतिक तीर्थ के रूप में भी स्थापित करता है, जहाँ संगीत-प्रेमी तथा शोधार्थी दोनों समान रूप से आकर्षित होते हैं। वर्तमान में मैहर में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की स्मृति में आयोजित होने वाले संगीत समारोह भी इस परम्परा की निरंतरता को बनाए रखने का महत्वपूर्ण माध्यम बने हुए हैं।

लोक कथाएँ, लोक विश्वास एवं मौखिक आख्यान परम्परा-

आल्हा-ऊदल गाथा के अतिरिक्त बघेलखण्ड की मौखिक साहित्यिक परम्परा में भोजगीत, रामायणी तथा महाभारती जैसी लोक-कथाएँ भी विशेष स्थान रखती हैं, जो रामायण एवं महाभारत के कथानकों को स्थानीय बघेली शैली में पुनर्रचित करके प्रस्तुत करती हैं। ये कथाएँ प्रायः रात्रि के समय ग्रामीण चौपालों पर, विशेष रूप से शीत ऋतु में, सामूहिक श्रवण के माध्यम से प्रचलित रहती हैं और इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, अपितु सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक शिक्षाओं का हस्तांतरण भी है। इसके साथ ही बघेलखण्ड में भूत-प्रेत, स्थानीय वीर-पुरुषों की आत्माओं तथा ग्राम-देवताओं से सम्बद्ध अनेक लोक-विश्वास भी प्रचलित हैं, जिनकी पूजा-पद्धति भगत नामक विशेष पुरोहित वर्ग द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। भगत परम्परा, जो झाड़-फूँक तथा आध्यात्मिक चिकित्सा से भी सम्बद्ध है, बघेलखण्ड के ग्रामीण समाज की सामूहिक मानसिकता तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी पारम्परिक विश्वासों को समझने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक तत्व है। इन लोक-कथाओं तथा विश्वासों का क्रमबद्ध संकलन एवं दस्तावेजीकरण बघेलखण्ड की मानवशास्त्रीय समझ को और अधिक समृद्ध कर सकता है, तथा भविष्य में इन्हें सांस्कृतिक पर्यटन के अंतर्गत कथा-वाचन तथा लोक-रंगमंच जैसी प्रस्तुतियों के माध्यम से भी पुनर्जीवित किया जा सकता है।

इस मौखिक आख्यान परम्परा का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह बघेलखण्ड के विभिन्न सामाजिक समूहों, यथा उच्च जाति, कारीगर जाति तथा जनजातीय समुदायों, के मध्य एक साझा सांस्कृतिक भाषा का निर्माण करती है। यद्यपि प्रत्येक समुदाय के अपने विशिष्ट लोक-देवता तथा अनुष्ठान-पद्धति हैं, तथापि आल्हा-ऊदल जैसी वीर-गाथाएँ तथा रामायणी-महाभारती जैसी कथाएँ समान रूप से सम्पूर्ण बघेलखण्ड समाज में प्रचलित हैं, जो एक व्यापक क्षेत्रीय सांस्कृतिक एकता का निर्माण करती हैं। यही कारण है कि इन मौखिक परम्पराओं का अध्ययन

बघेलखण्ड की सामाजिक संरचना तथा सांस्कृतिक एकता दोनों को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन प्रदान करता है।

रीवा दुर्ग, गोविंदगढ़ एवं राजसी लोक-संरक्षण परम्परा-

बघेलखण्ड की लोक संस्कृति के संरक्षण में रीवा रियासत के बघेल शासकों की भूमिका को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। रीवा दुर्ग, जो नगर के मध्य में स्थित है तथा वर्तमान में एक संग्रहालय के रूप में कार्यरत है, बघेल राजवंश की राजधानी होने के साथ-साथ रियासतकालीन कला, संगीत तथा साहित्य के संरक्षण का भी केन्द्र रहा। रियासती दरबारों में आल्हा-गायकों, लोक-नर्तकों तथा शास्त्रीय संगीतकारों को राजसी संरक्षण प्राप्त होता था, जिससे इन कलाओं का व्यवस्थित विकास सम्भव हुआ। गोविंदगढ़ का ग्रीष्मकालीन महल परिसर, जो रीवा नगर से अठारह किलोमीटर दूर स्थित है, भी इस राजसी-लोक सांस्कृतिक समन्वय का प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ राघव महल, बादल महल तथा अन्य ऐतिहासिक भवनों में रियासतकालीन उत्सवों तथा सांस्कृतिक आयोजनों की परम्परा प्रचलित थी। यह ऐतिहासिक तथ्य इस बात का प्रमाण है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति कभी भी केवल ग्रामीण अथवा जनजातीय समाज तक सीमित नहीं रही, अपितु इसे राजसी संरक्षण एवं संस्थागत समर्थन भी निरंतर प्राप्त होता रहा, जिससे इसकी निरंतरता तथा गुणवत्ता दोनों सुरक्षित रहीं।

रीवा संग्रहालय में संरक्षित रियासतकालीन पुरावस्तुओं, वस्त्रों, शस्त्रों तथा चित्रकारी के नमूनों का अध्ययन बघेलखण्ड की भौतिक लोक संस्कृति को समझने के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। इस संग्रहालय में संरक्षित विश्व के पहले श्वेत बाघ मोहन का संरक्षित शरीर भी रीवा रियासत की प्राकृतिक विरासत तथा वन्यजीव संरक्षण के प्रति ऐतिहासिक रुचि का प्रतीक है, जो बघेलखण्ड की सांस्कृतिक पहचान में मानव-निर्मित एवं प्राकृतिक विरासत के समन्वय को भी उजागर करता है। यदि इस संग्रहालय का आधुनिकीकरण करते हुए इसमें बघेलखण्ड की लोक-कला, संगीत तथा जनजातीय संस्कृति से सम्बद्ध एक समर्पित प्रदर्शन-कक्ष जोड़ा जाए, तो यह रीवा नगर को बघेलखण्ड के सांस्कृतिक पर्यटन का एक केन्द्रीय गंतव्य बनाने में सहायक होगा।

वर्तमान में मैहर में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ की स्मृति में आयोजित होने वाले संगीत समारोह भी इस परम्परा की निरंतरता को बनाए रखने का महत्वपूर्ण माध्यम बने हुए हैं। तथापि यह भी उल्लेखनीय है कि मैहर की पहचान वर्तमान में मुख्यतः शारदा देवी मंदिर के धार्मिक पर्यटन तक ही सीमित रह गई है, जबकि इसकी सांगीतिक विरासत को अपेक्षाकृत कम प्रचार-प्रसार प्राप्त हो पाया है। मैहर कॉलेज ऑफ म्यूजिक, जो अलाउद्दीन खाँ द्वारा स्थापित

किया गया था, आज भी सक्रिय रूप से कार्यरत है और नवीन संगीत-शिक्षार्थियों को प्रशिक्षित कर रहा है, परन्तु इस संस्था को सांस्कृतिक पर्यटन के व्यापक मानचित्र में समुचित स्थान दिलाने हेतु अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता है। यदि मैहर को धार्मिक तथा सांगीतिक दोनों पर्यटन के समन्वित केन्द्र के रूप में विकसित किया जाए, तो यह नगर बघेलखण्ड के सांस्कृतिक पर्यटन के सबसे प्रतिनिधि उदाहरणों में से एक बन सकता है।

हस्तशिल्प एवं पारम्परिक वस्त्र-शैलियाँ-

बघेलखण्ड की भौतिक लोक संस्कृति में हस्तशिल्प तथा पारम्परिक वस्त्र-शैलियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सतना जिला काँसा धातु से निर्मित बटलोही जैसे परम्परागत पात्रों के निर्माण के लिए विशेष रूप से जाना जाता है, जो इस क्षेत्र की धात्विक हस्तशिल्प परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अतिरिक्त कछहरिया तथा लामड़ा जैसी पारम्परिक वस्त्र एवं आभूषण शैलियाँ भी बघेलखण्ड की सांस्कृतिक विविधता को प्रदर्शित करती हैं। जनजातीय समुदायों द्वारा निर्मित बाँस, मिट्टी तथा काष्ठ से बनी वस्तुएँ, टोकरियाँ तथा गृह-उपयोगी सामग्री भी स्थानीय हस्तशिल्प परम्परा का महत्वपूर्ण अंग हैं। ये समस्त हस्तशिल्प उत्पाद, जो अधिकांशतः स्थानीय हाट-बाजारों तथा मेलों में विक्रय हेतु उपलब्ध होते हैं, सांस्कृतिक पर्यटन के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण आर्थिक सम्भावना प्रस्तुत करते हैं, बशर्ते इनके उत्पादन, विपणन तथा प्रचार हेतु समुचित संस्थागत सहायता उपलब्ध हो।

बांधवगढ़ एवं संजय-दुबरी : प्रकृति-सांस्कृतिक पर्यटन का संगम-

बघेलखण्ड की लोक संस्कृति का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम इसके वन्यजीव अभयारण्यों से सम्बद्ध जनजातीय जीवन-शैली है। बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान, जो विश्व के पहले श्वेत बाघ मोहन की खोज-स्थली होने के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विख्यात है, अपने चतुर्दिक क्षेत्रों में निवासरत बैगा तथा गोंड जनजातीय ग्रामों के कारण भी सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इन ग्रामों में परम्परागत वन-आधारित जीवन-शैली, स्थानीय वास्तुकला तथा जनजातीय रीति-रिवाज आज भी अपेक्षाकृत सुरक्षित रूप में विद्यमान हैं। इसी प्रकार सीधी एवं सिंगरौली जिलों की सीमा पर स्थित संजय-दुबरी राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र भी बैगा जनजाति के पारम्परिक निवास-क्षेत्रों में सम्मिलित है, जहाँ यह जनजाति अपनी विशिष्ट कृषि-पद्धतियों तथा वन-प्रबंधन ज्ञान के लिए जानी जाती है।

इन वन्यजीव अभयारण्यों में विकसित होने वाला पारिस्थितिकी-पर्यटन, यदि उसमें स्थानीय जनजातीय संस्कृति के प्रदर्शन तथा जनजातीय समुदायों की सहभागिता को समुचित रूप से सम्मिलित किया जाए, तो यह बघेलखण्ड में सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक पर्यटन के एक समन्वित एवं सतत मॉडल का निर्माण कर सकता है। वर्तमान

में अधिकांश पर्यटक इन क्षेत्रों में केवल बाघ-दर्शन के उद्देश्य से आते हैं, परन्तु स्थानीय जनजातीय ग्रामों में सुव्यवस्थित सांस्कृतिक भ्रमण, हस्तशिल्प प्रदर्शन तथा लोक-नृत्य प्रस्तुतियों की व्यवस्था करके इस पर्यटन के आयाम को विस्तृत किया जा सकता है, जिससे स्थानीय जनजातीय समुदायों को भी पर्यटन से प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त हो सके।

भारत के अन्य वन्यजीव पर्यटन क्षेत्रों, जैसे राजस्थान में सारिस्का अथवा कर्नाटक में बांदीपुर, के अनुभवों से यह स्पष्ट होता है कि सुसंगठित जनजातीय-सांस्कृतिक पर्यटन पैकेज, जिनमें स्थानीय समुदायों को गाइड, कलाकार अथवा हस्तशिल्प विक्रेता के रूप में सम्मिलित किया जाता है, न केवल पर्यटकों के अनुभव को समृद्ध करते हैं, अपितु स्थानीय समुदायों में संरक्षण के प्रति स्वामित्व की भावना भी उत्पन्न करते हैं। बांधवगढ़ तथा संजय-दुबरी में इस प्रकार के मॉडल को अपनाने से न केवल आर्थिक लाभ प्राप्त होगा, अपितु बैगा तथा गोंड जनजातियों की परम्परागत वन-प्रबंधन तथा जैव-विविधता संरक्षण सम्बन्धी ज्ञान-परम्परा को भी उचित मान्यता तथा दस्तावेजीकरण प्राप्त हो सकेगा, जो वर्तमान पारिस्थितिकी संरक्षण की वैज्ञानिक समझ के लिए भी अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हो सकता है।

वर्तमान चुनौतियाँ एवं संरक्षण की आवश्यकता-

बघेलखण्ड की लोक संस्कृति के वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण करने पर अनेक गम्भीर चुनौतियाँ सामने आती हैं। सर्वप्रथम, ग्रामीण युवाओं का शहरों की ओर बढ़ता पलायन इस बात का कारण बना है कि करमा, सैला, कोलदहका तथा गुदुम जैसी लोक-कलाओं के परम्परागत वाहक अब अपेक्षाकृत वृद्ध पीढ़ी तक सीमित रह गए हैं, जिससे इनके सतत हस्तांतरण की प्रक्रिया बाधित हो रही है। समाचार-पत्रों की रिपोर्टों से यह स्पष्ट होता है कि यह लोक-कला अब केवल बड़े सार्वजनिक आयोजनों के अवसर पर ही सामने आती है, जबकि दैनिक अथवा नियमित सामाजिक जीवन में इसकी उपस्थिति निरंतर कम हो रही है। द्वितीयतः, शासकीय स्तर पर बघेलखण्ड की लोक संस्कृति हेतु समर्पित संस्थागत ढाँचे का अभाव है, क्योंकि अधिकांश सांस्कृतिक संरक्षण योजनाएँ बुन्देलखण्ड अथवा मालवा क्षेत्र पर अधिक केन्द्रित रही हैं।

तृतीयतः, बघेली भाषा में लिखित साहित्य की कमी तथा इसके लिपिबद्ध न होने के कारण आल्हा-ऊदल जैसी गाथाओं के मूल पाठ में समय के साथ अनेक क्षेत्रीय भिन्नताएँ तथा प्रक्षेप उत्पन्न हो गए हैं, जिससे इनके मानकीकृत संरक्षण में कठिनाई उत्पन्न होती है। चतुर्थतः, बांधवगढ़ तथा संजय-दुबरी जैसे वन्यजीव क्षेत्रों में पर्यटन का केन्द्र-बिन्दु मुख्यतः बाघ-दर्शन तक सीमित रहने के कारण स्थानीय जनजातीय संस्कृति को समुचित पर्यटकीय अवसर

नहीं मिल पाता, जिससे जनजातीय समुदायों की आर्थिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो पाता। इन चुनौतियों का समाधान केवल शासकीय हस्तक्षेप से ही नहीं, अपितु स्थानीय समुदायों, शैक्षणिक संस्थानों तथा नागरिक समाज के संयुक्त प्रयासों से ही सम्भव है, जिसमें प्रत्येक पक्ष की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति भाषा, साहित्य, नृत्य, संगीत, हस्तशिल्प तथा जनजातीय जीवन-शैली के अनेक आयामों में फैली हुई एक अत्यंत समृद्ध एवं बहुआयामी सांस्कृतिक विरासत है। बघेली भाषा में रचित आल्हा-ऊदल गाथा, करमा-सैला जैसे जनजातीय नृत्य, कजरी-चैती जैसे लोक-गीत, तथा मैहर घराने की शास्त्रीय संगीत परम्परा मिलकर इस क्षेत्र को एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान प्रदान करते हैं, जो कि धार्मिक स्थलों से भिन्न परन्तु समान रूप से महत्वपूर्ण सांस्कृतिक पर्यटन का आधार बन सकती है। कोल, गोंड तथा बैगा जनजातियों की सामाजिक संस्थाएँ, जैसे कोल जनजाति की गोहिया पंचायत व्यवस्था, तथा उनकी वन-केन्द्रित जीवन-दृष्टि इस क्षेत्र की सामाजिक बहुलता को और अधिक स्पष्ट करती हैं।

यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि बघेलखण्ड की यह समृद्ध लोक संस्कृति परम्परा वर्तमान समय में शहरीकरण, आधुनिकीकरण तथा युवा पलायन के दबाव में निरंतर क्षीण होती जा रही है। मौखिक परम्परा पर आधारित होने के कारण यह सांस्कृतिक धरोहर विशेष रूप से नाजुक है, क्योंकि इसके वाहक कलाकारों तथा गायकों के अभाव में यह परम्परा स्थायी रूप से लुप्त हो सकती है। बुंदेलखण्ड, मालवा तथा निमाड़ जैसी मध्य प्रदेश की अन्य सांस्कृतिक धाराओं की तुलना में बघेलखण्ड की लोक संस्कृति को अपेक्षाकृत कम शासकीय संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार प्राप्त हुआ है, जिसके कारण यह क्षेत्र अपनी वास्तविक सांस्कृतिक सम्भावना का पूर्ण उपयोग नहीं कर पा रहा है।

यह अध्ययन इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति केवल भूतकाल की धरोहर नहीं है, अपितु यह आज भी ग्रामीण तथा जनजातीय समाज के दैनिक जीवन का जीवंत अंग है। आल्हा-ऊदल गाथा का वर्षा ऋतु में सामूहिक गायन, दशहरा के अवसर पर करमा नृत्य का आयोजन, तथा मैहर घराने की संगीत परम्परा का निरंतर प्रवाह यह प्रमाणित करता है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति अभी भी अपनी मूल जीवन-शक्ति के साथ विद्यमान है, यद्यपि इसे संस्थागत समर्थन की तत्काल आवश्यकता है। सम्पूर्णतः यह कहा जा सकता है कि बघेलखण्ड की लोक संस्कृति न केवल ऐतिहासिक तथा मानवशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यवान है, अपितु सुव्यवस्थित

सांस्कृतिक पर्यटन के माध्यम से इसका आर्थिक एवं सामाजिक पुनर्जीवन भी सम्भव है, बशर्ते इस दिशा में समयबद्ध एवं समन्वित प्रयास किए जाएँ।

सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर बघेलखण्ड की लोक संस्कृति के संरक्षण एवं सांस्कृतिक पर्यटन के विकास हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, रीवा अथवा सतना में एक समर्पित लोक संस्कृति संग्रहालय की स्थापना की जानी चाहिए, जो बघेलखण्ड की भाषा, साहित्य, नृत्य, संगीत तथा हस्तशिल्प परम्पराओं का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण तथा प्रदर्शन कर सके, जिस प्रकार खजुराहो में आदिवर्त जनजातीय लोककला संग्रहालय कार्यरत है। द्वितीयतः, आल्हा-ऊदल गाथा तथा अन्य मौखिक लोक-गाथाओं के वृद्ध गायकों एवं कलाकारों का ऑडियो-विजुअल दस्तावेजीकरण तत्काल प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए, क्योंकि इस मौखिक परम्परा के वाहकों की संख्या निरंतर घट रही है।

तृतीयतः, करमा, सैला, अहिररई-लाठी तथा गुदुम्बाजा जैसे लोक-नृत्यों के कलाकारों तथा दलों को नियमित मासिक अथवा त्रैमासिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से मंच प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे उन्हें निरंतर आर्थिक तथा सामाजिक प्रोत्साहन प्राप्त हो सके। चतुर्थतः, बांधवगढ़ तथा संजय-दुबरी जैसे वन्यजीव अभयारण्यों में संचालित पर्यटन पैकेजों में स्थानीय जनजातीय ग्रामों के भ्रमण, हस्तशिल्प क्रय तथा लोक-नृत्य प्रस्तुतियों को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे वन्यजीव पर्यटन तथा सांस्कृतिक पर्यटन के बीच सीधा आर्थिक सम्बन्ध स्थापित हो सके। पंचमतः, मैहर संगीत घराने की स्मृति को जीवंत रखने हेतु मैहर में एक वार्षिक शास्त्रीय संगीत महोत्सव का आयोजन प्रतिवर्ष किया जाना चाहिए, जिससे यह नगर संगीत-प्रेमियों तथा शोधार्थियों के लिए एक स्थायी सांस्कृतिक गंतव्य बन सके।

षष्ठतः, स्थानीय विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में बघेली भाषा-साहित्य एवं बघेलखण्ड की लोक संस्कृति पर केन्द्रित प्रमाण-पत्र अथवा लघु-अवधि पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए जाने चाहिए, जिससे नई पीढ़ी में अपनी सांस्कृतिक जड़ों के प्रति गर्व एवं ज्ञान उत्पन्न हो सके। सप्तमतः, स्थानीय हस्तशिल्प उत्पादों, जैसे काँसे के पात्र तथा पारम्परिक वस्त्र, हेतु सरकारी सहायता से विपणन केन्द्रों तथा ऑनलाइन बिक्री मंचों की स्थापना की जानी चाहिए, जिससे कारीगरों को उचित आर्थिक प्रतिफल प्राप्त हो सके। अंततः, बघेलखण्ड की लोक संस्कृति के संरक्षण हेतु जिला प्रशासन, संस्कृति विभाग, स्थानीय विश्वविद्यालयों तथा जनजातीय समुदायों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करते

हुए एक स्थायी सांस्कृतिक संरक्षण समिति गठित की जानी चाहिए, जो इन समस्त सुझावों के क्रियान्वयन की नियमित समीक्षा एवं मार्गदर्शन कर सके, जिससे बघेलखण्ड की समृद्ध लोक संस्कृति आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रह सके।

इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि बघेलखण्ड के लोक-कलाकारों, विशेष रूप से आल्हा-गायकों तथा जनजातीय नृत्य-दलों को शासकीय स्तर पर औपचारिक मान्यता तथा नियमित मानदेय प्रदान किया जाए, जिससे ये कलाकार अपनी कला को जीविकोपार्जन के एक सम्मानजनक साधन के रूप में अपना सकें, न कि केवल पारम्परिक दायित्व के रूप में निर्वहन करें। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष एक 'बघेलखण्ड लोक संस्कृति महोत्सव' के आयोजन पर भी विचार किया जाना चाहिए, जिसमें क्षेत्र की समस्त लोक-कलाओं, जैसे नृत्य, संगीत, हस्तशिल्प तथा भोजन-परम्परा, को एक ही मंच पर प्रस्तुत किया जा सके, जिससे न केवल स्थानीय जनमानस अपितु राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों का भी ध्यान बघेलखण्ड की इस समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की ओर आकर्षित हो सके। इस प्रकार के व्यापक, संस्थागत तथा सतत प्रयासों से ही बघेलखण्ड की लोक संस्कृति आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखी जा सकेगी।

संदर्भ-

1. रीवा राज्य गजेटियर, मध्य प्रदेश शासन, भोपाल।
2. बघेलखण्ड की लोक सांस्कृतिक परम्पराओं का अध्ययन, जर्नल ऑफ द ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, शोध लेख।
3. बघेली बोली : उद्भव, विकास एवं साहित्य, भारतकोश संकलन।
4. आल्ह-खण्ड : वीर-गाथा साहित्य, लोक-साहित्य संकलन।
5. बघेलखण्ड की लोक कला एवं लोक नृत्य परम्पराएँ, स्थानीय शोध साहित्य।
6. मध्य प्रदेश की जनजातियाँ : सामाजिक संरचना एवं संस्कृति, जनजातीय शोध साहित्य।
7. उस्ताद अलाउद्दीन खाँ एवं मैहर घराना : संगीत परम्परा का इतिहास, संगीत शोध साहित्य।
8. मध्य प्रदेश पर्यटन विकास निगम, वार्षिक प्रतिवेदन एवं सांस्कृतिक पर्यटन दस्तावेज।
9. आदिवर्त जनजातीय लोककला राज्य संग्रहालय, खजुराहो : कार्यक्रम प्रतिवेदन, मध्य प्रदेश संस्कृति विभाग।
10. बांधवगढ़ एवं संजय-दुबरी राष्ट्रीय उद्यान : जनजातीय जीवन एवं पारिस्थितिकी पर्यटन, वन विभाग प्रतिवेदन।

11. जिला सांख्यिकीय हस्तपुस्तिका, रीवा, सतना, सीधी, सिंगरौली जिले, मध्य प्रदेश शासन।

12. मध्य प्रदेश की लोक संस्कृति : कला, संगीत एवं हस्तशिल्प, सामान्य ज्ञान संकलन।